REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

हिंदी कथा साहित्य के इतिहास में नारीवादी विमर्श की वैविध्यता

डॉ. अरजण वी. नंदाणीया
एम.ए., पीएच.डी.
श्री वी. एम. महेता म्युनि. आर्टस एवं कॉमर्स कॉलेज जामनगर (गुजरात)

भूमिका

हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएँ देखने को मिलती है। हिंदी साहित्य में छायावाद काल से नारी विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रंखला की कड़िया नारी सशक्तिकरण का सुंदर उदाहरण माना जाता है। आठवे दशक तक आते–आते यही विषय एक आंदोलन का रूप ले लिया। जो शुरुआती नारी विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रैयी पुष्पा तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। जो पितसृत्ता समाज को झकझोर दिया नारी मुक्ति की गुंज अब देह मुक्ति के रुप में परिलक्षित होने लगा है। साहित्य में महिला लेखन के रुप में उपलब्ध विभिन्न कहानियों, कविताओं तथा आत्मकथाओं में नारी की दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नहीं हो पा रहा है। नारी साहित्य के सवालों के मूल्यांकन के संदर्भ में भी हिंदी आलोचना में गैर–अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरूष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरूद्ध उठ खड़े हुए। नारीयों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन का नाम दिया गया। वस्ततुः नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है। जो नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। नारी मुक्ति अकेले नारी का प्रश्न नही है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मूक्ति की अनिवार्य शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियॉ सपल नहीं हो सकती।

विमर्श का मतलब किसी वस्तु के बारे में लोगों के बात–चीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिल–जुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं। विमर्श का अर्थ किसी एक निश्चित फ्रेम वर्क में किसी विषय के बारे में सोचना है, धारणा है और धारणाकारी व्यक्ति विशेष की नहीं होती सामान्य लोगों की होती है। जैसे नारीयों के बारे में लोग क्या सोचते हैं, उनके बारे में क्या विचार रखते हैं यह सब विमर्श यानी डिस्कोर्स है। इसी तरह 'नारीवादी–विमर्श' यानी नारी को समग्रता के साथ जानने, समझने और उसे बेहतर बनाने की पड़ताल है। ''नारीवादी–विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में नारी–मुक्ति के प्रयासों से है। नारी की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ–साथ बदलते सामाजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्में नए प्रश्नों के टकराने के साथ–साथ आज की नारी की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप में अस्वीकारे जाने का प्रश्न ही है।''1 नारी के मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानव जाति का सबसे अहम सवाल बन गया है। क्योंकि आज के इस युग में भी मनुष्य की अवधारणा में मात्र पुरुषों को स्थान दिया गया है।

नारीवादी–विमर्श ''नारी की अस्मिता की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है।''2 नारी का व्यक्ति के रूप में पहचान करना, अपनी सम्पूर्णता में जी सकना, अपनी प्रकृति एवं व्यक्तित्व विशेषताओं को आत्मसात कर प्रकाशित करना, मनुष्य जाति के बचे रहने की शर्त है।

नारीवादी–विमर्श नारीयों के ऊपर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से थोपी गयी मान्यताओं और रूढ़ियों के विरोध में उभरा वैचारिक आन्दोलन है। नारी समाज का अभिन्न अंग है, जब से सृष्टि में नर और नारी का सर्जन हुआ है तब से वर्तमान आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के परिवेश में नारी विमर्श एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है। समय परिवर्तन के साथ–साथ नारी विमर्श के संदर्भ में भी भिन्नता पायी जाती है और समय के साथ उसमें परिवर्तन भी आता है।

नारीवादी–विमर्श को प्रो0 गिरीश रस्तोगी एक जाग्रत आन्दोलन की मुहिम के रूप में स्वीकारते है। उनका कहना है कि– ''नारीवादी–विमर्श बहस का उतना विषय नहीं है जितना जागृति का।''3 इसमें नारी अपने विकास के अवसरों की तलाश करते नजर आती है– ''नारीवादी–विमर्श का मूल उद्देश्य महान रचना करने या श्रेष्ठ नारी चरित्रों को गढ़ने की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। इसका मूल उद्देश्य नारी मुक्ति के संदर्भ में अधिकाधिक अवसर तलाश करने की साहित्यिक प्रक्रिया से है। यह मुक्ति उसकी वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी शारीरिक भी है और यौनिक भी।''4

नमिता सिंह का कहना है कि– ''जब हम नारीवादी–विमर्श की बात करते है तो उसका अर्थ सामाजिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ा होता है। किसी भी समाज के विकास का पता इस बात से चलता है कि वहाँ नारी की स्थिति कैसी है जिसमें मुख्य पैमाना नारी की शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन और उसकी निर्णय क्षमता है। कहना न होगा ये सभी तत्व आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी के साथ सामाजिक भी एक आवश्यक आयाम है। इन पायदानों पर चढ़ने के बाद ही नारी अपनी देह या अपने अधिकार की बात कर सकती है।

इसी के बाद वह स्वनिर्णय की स्थिति में होती है।''5 ''विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो विचार का विचार और वर्चस्व की प्राप्ति। अंग्रेजी में इसके लिए 'डिस्कोर्स' शब्द का प्रयोग किया जाता है। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट–पुटल कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।''6 अर्थात् किसी विषय पर अभी तक जो लेखन या विचार होता आया है उस पर पुनः विचार कर उसकी दशा और दिशा का मूल्यांकन करना है। ''नारीवादी–विमर्श में व्यक्ति को अपनाने की स्वतंत्रता और स्वायत्तता का विचार है। यह विचार है उन लोकतंत्रात्मक मूल्यों की स्थापना का जो समता, समानता, स्वतंत्रता, सौहार्द, वर्गहीन मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते है। और उसी के अनुरूप नारी की भी प्रतिष्ठा होनी चाहिए। उसे ऐसे नारी कदापि नहीं स्वीकार है जो एक वर्ग, जाति, नस्ल राष्ट्र में बाँटी जा रही हो क्योंकि छद्म दमन का ही रूप है, शोषण का एक नया तरीका है।''7

नारीवादी–विमर्श प्रश्न के घेरे में पुरुष को नहीं रखता वरन् पुरुष तंत्र को खड़ा करता है। न्याय की खातिर न जाने कब से चली आ रही सामाजिक विधान को पलटकर वह नारी की भूमिका स्वीकार करने का साहस नहीं दिखा पाता है। इसीलिए आज की नारी नियम, कानून–कायदे की मूलभूत संरचना को ही पलट कर रख देना चाहती है। इस संदर्भ में तस्लीमा नसरीन का कहना है कि– ''कभी मेरी बहुत इच्छा थी कि जिस तरह शादियाँ करके पुरुष एक घर में चार बीबियाँ रखकर जीवन यापन का अधिकार रखता है, उसी तरह मैं भी चार शादियाँ करके चार पतियों के साथ जीवन बिताऊँ। ऐसी घटना से बहुत–सी लड़कियाँ उत्साहित होती और तभी लोगों की चेतना जगती कि जो नियम इस समाज में प्रचलित है, उन्हें उलट देने पर कैसा लगता है।''8 बड़ी बिडम्बना की बात है कि 21वीं सदी में भी हमारा अधिकांश समाज मध्यकाल की जड़ मानसिकता रीति–रिवाज, रूढ़ियों, नियमों, मान्यताओं, परम्पराओं, प्रणालियों और जीवन–पद्धतियों में जकड़ा है, उससे मुक्त नहीं हो सका, सम्पूर्ण नारी जाति का नारी इतिहास आदमी और नारी की मूक पीड़ा, उसके शोषण एवं दमन का इतिहास है। मजदूर की देह जैसे पूँजीपति का मालिकाना है वैसे नारी की देह, मन–मस्तिष्क और आत्मा पति (पुरुष) की। परन्तु सम्पन्न या विपन्न अथवा मजदूर तथा पूँजीपति और नारी–पुरुष के बीच का द्वन्द्व अलग हो जाता है क्योंकि नारी–पुरुष के द्वन्द्व में भी दोनों का हित अलग नहीं एक ही है।

नारीवादी–विमर्श में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है 'नारी–दृष्टि', समाज को देखने का स्त्रियोचित नजरिया अर्थात् नारी के लिए क्या सही है? क्या गलत है? इसका निर्णय नारी की दृष्टि से किया जाए, क्योंकि अब तक सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था यहाँ तक की कि नारी से जुड़ी हुई प्रत्येक समस्याएँ और उनको देखने का पक्ष पुरुषोचित रहा है। नारी दृष्टि उस दृष्टि को प्रमुखता देती है, जिसमें समाज, समाज द्वारा स्थापित मानदण्डों को नारीयों की दृष्टि से देखा जाए, उसे उसके नजरिये से परिभाषित किया जाए तथा उन मूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों की पुनर्व्यवस्था की जाए, जिसमें 'नारीत्व' की छद्म छवि गढ़ते हए एक निश्चित खाँचे में डाले रखा। उसकी अभिव्यक्ति को दबाए रखा और उसके लिए निश्चित मूल्य बनाये, जिसके अनुसार चलना नारीयों की मजबूरी बनी।

आज महिला लेखन में नारी वर्ग की शिकायतों, उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध, छुपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिद्दत से अभिव्यक्ति मिल सकती है। रोजमर्रा की जिंदगी में निजी घटनाओं का जितना सटीक वर्णन एक नारी कर सकती है, उतना पुरुष नहीं कर सकता। इस प्रकार नारी–लेखन के द्वारा उनके निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति उनके भोगे हुए यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति है जिसे कोई पुरुष अपनी संवेदनशीलता से उस रूप में व्यक्त नहीं कर सकता जिस रूप में एक महिला व्यक्त कर सकती है। नारी–साहित्य की धारणा– 'साहित्य की धारणा से भिन्न है। ''नारी साहित्य वस्तुतः नारी की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियाँ है जो अभी क दबी हुई थी, दमित थीं, उत्पीड़ित थीं।''9

नारी साहित्य वह है जो नारी रचित है। नारी रचित होने के कारण ही उसे उस 'नारी–साहित्य' की कोटि में रखा जाता है। किन्तु 'नारीवादी–साहित्य नारी पुरुष दोनों को लिखा हो सकता है। यह ऐसा साहित्य है जो नारी के हितों एवं नारीवादी राजनीति का पक्षधर होता है। 'नारी साहित्य' की तुलना में नारीवादी साहित्य व्यापक परिदृश्य को समेटता है। नारीवादी चिंतन की दृष्टि से लिंग–भेद नारी–पुरुष के बीच की संरचनात्मक असमानता की बुनियाद है। नारी–साहित्य को मुख्यधारा के साहित्य को साहित्य की मुख्यधारा में रखकर ही पढ़ा जाना चाहिए जिससे साहित्य समृद्ध होगा। इस प्रकार चाहे नारी हो या पुरुष यदि नारी जीवन को मानवीय सरोकारों के संदर्भ में उनके संघर्ष को उद्घाटित करते है तो वह नारीवादी साहित्यकार और उसका लेखन नारी साहित्य होगा।

साहित्य में 'नारीवादी–विमर्श' के विषय में यह विवाद का विषय रहा है कि नारीवादी–विमर्श में नारीयों के लिए सुरक्षित क्षेत्र है या लेखन होने के नाते पुरुष की भागीदारी की भी सम्भावना रहती है। नारी–पुरुष दोनों को स्थान दिया जाय अथवा नहीं। इस संदर्भ में सभी विद्वान व आलोचक एकमत होते नजर नहीं आते हैं। हिन्दी साहित्य के कुछ प्रतिष्ठित लेखक व आलोचक यह स्वीकार करते हैं कि इसमें दोनों को शामिल किया जाना चाहिए, वहीं कुछ लेखक व आलोचक इसके प्रतिपक्ष में कहते हैं कि– सिर्फ नारीयों द्वारा लिो नए साहित्य को ही 'नारीवादी–विमर्श' के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। जबकि बहुत का यह मानना है कि जरूरी नहीं है कि स्त्रियाँ ही नारीयों को सही रूप में अभिव्यक्त कर सकें क्योंकि कभी कभी उनका समाज को देखने का नजरिया, नारीयों की समस्याएँ, समाज द्वारा बनाए गये मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं एवं रूढ़ियों के मूल्यांकन की पुरुषोचित नजरिये से प्रभावित होती है। वे नारी होकर भी नारीयों की समस्याओं को सही ढंग से नहीं समझ पाती हैं। इसलिए 'सहानुभूति' और 'तदानुभूति' के छीने पर्दे को सही ढंग से समझकर किया गया कोई भी नारी विषयक लेखन 'नारीवादी–विमर्श' के भीतर आयेगा। क्योंकि एक नारी कलाकार, कवि या लेखक के सृजन रूप में जो भी विचलन पैदा करती है, वह एक सर्जक का विचलन है। नारी या पुरुष का नहीं बल्कि वह ऐसा तभी कर पाती है जब वह भूल जाती है कि वह नारी है या पुरुष।

'नारी दृष्टि' नारीवादी–विमर्श में साहित्य को दो रूपों खेमों में बाँटता है– नारी साहित्य और नारीवादी साहित्य। इसके पीछे विद्वानों और आलोचकों का तर्क है जो साहित्य नारी के द्वारा नारी के लिए विषय में लिया जाता है वह नारी–साहित्य कहलाएगा और जो साहित्य नारी दृष्टि की अवधारणा में नारी व पुरुष दोनों की रचनाओं को माना जाएगा जिसमें नारी सम्बंधी बुनियादी प्रश्नों को उठाया जाता है। यह दृष्टि न पितृसत्तात्मक मूल्यों, समाज द्वारा बनाए गये दोहरे मानदण्डों, लिंगभेद के कारण दयनीय जीवन स्थितियों में फँसी नारीयों एवं समाज में नारी की अलग छवि को परखने की नयी दृष्टि देती है। उनकी दृष्टि में नारी–शोषण एवं वर्चस्ववादी सामंती व्यवस्था है जिसने नारी को सदैव किसी न किसी नैतिकता, मर्यादा, आदर्श और पारिवारिक दायित्वों की सीमा में बाँधा हो, का बोध कराया। नारी दृष्टि इन तथ्यों को उजागर किया और उससे मुक्त होने की पहल भी

की। इस प्रकार नारी साहित्य के भीतर केवल महिला रचनाकार ही आयेगी लेकिन जब हम नारीवादी साहित्य की बात करते है तो उसमें पुरुष और नारी दोनों का लेखन सम्मिलित होता है।

सामान्यतः हिन्दी में प्रयुक्त नारीवाद या नारीवाद शब्द का समानार्थी अंग्रेजी शब्द 'फेमिनिज्म', मूलतः फ्रेंच भाषा में उन्नीसवीं सदी में प्रचलित शब्द है, जो चिकित्साशास्त्र में प्रयुक्त होता था। वह पुरुष देह में नारीपन के गुण या पुरुष स्वभाव में व्यवहार करने वाली नारी को सूचित करने वाला प्रयोग था। बाद में अमेरिका में, बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में इस शब्द का उपयोग कुछ सामान्य विशेषताओं में दिखाने वाली महिलाओं के समूह के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। यह मातृत्व एवं यौन–शुचिता की मिथकीय परिकल्पना से जुड़ा हुआ था। कालान्तर में यह संगठित नारी–समूह का पर्यायवाची शब्द बन गया जो वैचारिक बल पर पूरी नारीयों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए कार्य करता है।

समाज में नारी के प्रति जागृति लाना तथा नारी के स्वत्व के अस्तित्व की पहचान को स्थापित करने का प्रयास ही नारीवाद अथवा नारी विमर्श है। इसमें नारी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पहचान हेतु अनेक संघर्ष तथा आन्दोलन हुए और वर्तमान में जारी भी है जिनका महत् उद्देश्य नारी के लिए सुखद भविष्य का निर्माण करना है। नारी को निष्पक्ष न्याय मिले तथा उसके स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण हो तभी समाज में व्याप्त लिंग भेद समाप्त हो सकेगा। पूरी दुनिया में अन्य बातों की तरह, नारी–मुक्ति की अभिधारा के विकास में भी पुरुषों का अहम योगदान है। इतिहास गवाह है कि जान स्टुअर्ट मिल की 'दि सब्जुगेशन ऑफ वुमन' (1809) से लेकर यह आधुनिक दृष्टि प्रवृत्त हुई।

फ्रेडरिक एंगेल्स की 'दि ओरिजिन ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड द स्टेट' 1884 में प्रकाशित हुई, जिसकी चर्चा भी नारीवाद के विकास में महत्वपूर्ण है। विविध सामाजिक आन्दोलन हों या कला–सांस्कृतिक जागरण, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन हो या महिला आरक्षण बिल सबमें पुरुषों को देय है। नारीयों के पक्ष में सतत बोलने व कार्य करने वाले लोगों की दृष्टि रखकर पुरुष नारीवाद और पुरुष नारीवादी माने 'मेल फेमिनिज्म' और 'मेल फेमिनिस्ट' शब्द स्वीकृत हैं।

नारीवादी लेखन में यह विवाद का विषय रहा है कि इसमें नारी के अलावा पुरुष को सम्मिलित किया जाय अथवा नहीं, तो बहुत से लोगों का मानना था कि पुरुषों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। इस संदर्भ में नारी के अनुभव की प्रामाणिकता की बात यद्यपि महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में बहुत पहले कर चुकी थीं परन्तु उन्होंने 'नारी प्रश्न' को पुरुष के लिए वर्जित क्षेत्र नहीं माना था– ''पुरुष के द्वारा नारी चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है। परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है किन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है नारी के लिए अनुभव, अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।''10 पुरुष चाहे कितना भी ईमानदार हो उनकी भूमिका 'हमदर्द' से अधिक नहीं हो सकती। वे हमेशा पुरुष स्थिति में ही रहकर इसे 'विषय' के रूप में विचार करेंगे। नारीत्ववाद पुरुष को 'कर्ता' की भूमिका देने से इंकार करता है। जैसा कि पंकज विष्ट कहते हैं– ''लेखन के संदर्भ में नारी पुरुष के भेद को खत्म करने वाली बात मूलतः पुरुष मानसिकता और वर्चस्व को बनाए रखने की साजिश के रूप में देखी जानी चाहिए जो नारी के वास्तविक सरोकारों और पीड़ाओं को अभिव्यक्ति में बाईपास का काम करेगी।''11

नारी केन्द्रित रचनाओं में नारी की पद स्थिति सिर्फ नारी होने से नहीं होती, उसकी भूमिका यदि एक खान मजदूर, एक वकील, एक शिक्षक या एक डॉक्टर की भी है तब रचनाकार एक घरेलू नारी होने के नाते उसके अनुभव समेट सकती है, तो एक खनन मजदूर, एक वकील, एक शिक्षक, एक डाक्टर होने के नाते पुरुष भी वे ही अनुभव कर सकता है। नारी देह के वे अनुभव जो सिर्फ नारी ही महसूस कर सकती है– में पुरुष लेखक की वही भूमिका होती है जो नारी रचनाकार होने के नाते पुरुष देह के अनुभवों की अभिव्यक्ति करते समय होती है। नारी के वैयक्तिक अनुभवों मासिक धर्म, गर्भावस्था, प्रसव आदि पर पुरुष का लेखन 'रचना' के धरातल पर तौला जाना महत्वपूर्ण है, न कि रचनावली के धरातल पर। यदि उसमें ताकत होगी तो सिर्फ पुरुष लेखन के आधार पर उसे नकारा जाना साहित्यिक न्याय नहीं है। ऐसे पुरुष रचनाकार भी नारीवादी माने जायेंगे।

प्रख्यात कथा लेखिका चित्रा मुद्गल का मानना है कि– ''नारीवादी–विमर्श सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का दायित्व है। यदि वह बाबा नागार्जुन का नारीवादी–विमर्श है तो हमें मंजूर है। मैं नहीं मानती कि जो महिलाएँ

लिखेंगी, वही नारीवादी–विमर्श का हिस्सा होगा। लेकिन इसके साथ मेरी कुछ शर्त भी है। मेरा स्पष्ट मानना है कि कुछ पुरुष नारीवादी–विमर्श को गलत दिशा दे रहे हैं। वे स्वच्छंदता को नारीवादी–विमर्श का नाम देना चाहते हैं। विडम्बना यह है कि कुछ लेखिकाएँ भी उनके बहकावे में आ रहीं है। यह दिशा हमें मंजूर नहीं है। इसलिए मैं जरूर मानती हूँ कि 'नारीवादी–विमर्श' की दिशा हम लेखिकाएं ही तय करेंगी।''12

नारी पर केन्द्रित प्रत्येक कृति नारीवादी–विमर्श की सीमा में नहीं आती, न ही नारी रचनाकार द्वारा रची गयी प्रत्येक रचना। ''नारी दृष्टि 'सहजात दशा न होकर अर्जित स्थिति है।' सिर्फ नारी होने के नाते नारी–दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियाँ स्वयं की दुनिया को एक मानक पुरुष दृष्टि से देखने की इतनी अभ्यस्त होती हैं कि उन्हें वह अपनी दृष्टि 'नारी की दृष्टि' महसूस होती है। कई नारी रचनाकारों द्वारा नारी को इसी पुरुष दृष्टि से परखा गया है। इन नारी रचनाकारों को हाशिये पर रखकर ही बात करनी हो जो पुरुष दृष्टि से आक्रान्त हैं एवं पुरुषवादी नजरिए तक पहुँचने को नारी की मुक्ति में शामिल करती हैं। इसके समानान्तर पुरुषों में 'नारीदृष्टि' उसी तरह सम्भव हो सकती है जिस तरह नारीयों में 'पुरुष दृष्टि'।''13 'नारी का पढ़ना' और 'नारी की तरह पढ़ना', 'नारी की तरह अनुभव' में 'नारी की तरह पढ़ना' और 'नारी की तरह अनुभव' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है कि लेखक जिन तथ्यों–सत्यों की अपनी बारीक संवेदना शक्ति से जिस तरह पकड़ पाता, कई बार भोक्ता भी नहीं पकड़ पाता है। अनुभव करने की क्षमता, संवेदना और उसी स्तर पर अभिव्यक्त करने की क्षमता, लेखक को लेखक बनाती है। क्योंकि भोगने और महसूस करने की क्षमता सभी में एक सी नहीं होती। संवेदना के बिना रचना बन ही नहीं सकती चाहे कितना ही सामाजिक यथार्थ आपके पास हो। यह अतिवादी बात है कि नारी ही नारी लेखन कर सकती है। ''एक नारी कलाकार, कवि या लेखक के सृजन रूप में जो भी विचलन पैदा करता है, वह एक सर्जक विचलन है। नारी या पुरुष का नहीं, बल्कि वह ऐसा तभी कर पाती है जब वह भूल जाती है कि वह नारी है या पुरुष। सृजन को सृजन की तरह देखा जाना चाहिए।''14

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है और साहित्य भी पितृसत्ता की कैद से मुक्त नहीं रहा है, चाहे वह आदिकालीन साहित्य हो, मध्यकालीन हो या आधुनिक। इस संदर्भ में शालिनी माथुर लिखती है कि– ''साहित्य सर्जना पर अधिकतर पुरुषों का ही अधिकार रहा है। अतः साहित्य में नारी के रूपाकार की सर्जना भी पुरुष वर्चस्व के अधीन रही। उसमें नारी भी वही सोचती और करती हुई निरूपित हुई, जैसे सोचती और करती हुई नारी पुरुष चाहता है। साहित्य में चित्रित नारी भाव भी पुरुष द्वारा निर्धारित निरूपित कर रहा है। इसलिए वह नारी भाव हो यह जरूरी नहीं।''15 नारीवादी–विमर्श, नारीवादी लेखन को लेकर गम्भीर रहा है। नारीवादी–विमर्श यह मांग करता है कि पुरुष आलोचना के स्थायित्व प्रतिमानों के संदर्भ में नारी प्रश्न उठाए। सत्ता के प्रतिमानों को अपनाने से उत्पीड़न की स्थिति नहीं बदलती।

नारीवादी चिंतन आज विज्ञान के मर्दवादी आख्यान के सामने भी प्रश्नचिह्न लगाती है– ''पितृसत्ता अपने को मजबूत बनाने के लिए पहले धर्म का सहारा लेती थी, आज विज्ञान का सहारा लेती है। विज्ञान की मदद से हजारों लाखों की संख्या में लड़कियों की भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं। कहीं भूल से भी वह पैदा हो ही गई तो कुपोषण की शिकार हो मरे किसी तरह।''16 नारीवादी विमर्श में समकालीन परिदृश्य में नारी की भूमिका और अस्मिता लेकर जन्मी विसंगतियों के पहचान की सजग अकुलाहट, छटपटाहट है। उसमें पश्चिम में चल रहे नारीवादी आन्दोलनों की हूबहू नकल से बचने के सार्थक प्रयत्न दिखाई देते हैं। इसके साथ ही आन्तरिक अन्तर्विरोधों से जूझते हुए समन्वित कार्ययोजना की कोशिश भी दिखायी देती है। हलाँकि नारीवादी आन्दोलन का विस्तार शहरी मध्यवर्ग की नारीयों तथा उच्चवर्गीय नारीयों के बीच व्यापक है किन्तु सीमित स्तर पर उसने ग्रामीण समाज की नारीयों तथा निम्नवर्गीय नारीयों में भी मुक्ति की चेतना पैदा की है।

समकालीन नारी–विषयक चिंतन नारी जीवन की समस्याओं एवं दलन के अनुभवों की अभिव्यक्ति करता है। आधुनिक नारीवाद नारी संदर्भ में पारम्परिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। ''नारीवाद एक ऐसा विचार है जो कि पुरुष और नारी के मध्य असमानता को स्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आन्दोलन भी। नारीवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत मूल्यरूप से समानता व सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं व पुरुषों के मध्य व्याप्त असमानता को नकारना है।''17 ''नारीवादी साहित्य नारी–पुरुष दोनों का लिखा हो सकता है। यह एक ऐसा साहित्य है, जो नारी के हितों एवं नारीवादी राजनीति का पक्षधर होता है।''18 ''साहित्य में नारीवादी–विमर्श का अर्थ मात्र नारी द्वारा नारी के ही विषय में नारीवादी मुद्रा में लिखा गया साहित्य नहीं है। अर्थात् साहित्य में नारी

के विमर्श को नारी विषयक आघात या नारी–पुरुष टकराव या नारीवाद तक सीमित करना गलत समझदारी है।''19

नारीवाद या नारीवाद की कोई निश्चित परिभाषा स्वीकृत नहीं है। संकल्पनाओं के विविध पक्षों को लेकर नारीवादियों के बीच बहस अनवरत जारी है। नारीवाद को नारीयों द्वारा घर–परिवार, काम–काज एवं समाज में होने वाले समस्त शोषणों का का विरोधी सोच–विचार कहा जा सकता है। 'फेमिनिज्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 25 अप्रैल, 1895 को 'अन्तेन्वय' नामक पत्रिका में हुआ था जिसका अर्थ है– अपनी स्वायत्तता को स्थापित करने वाली। इसमें संदेह बिल्कुल नहीं होना चाहिए कि नारी–पुरुष समतावाले मानवीय दर्शन से प्रेरित होकर नारीवाद का आरम्भ हुआ था, जो स्वतंत्रता, संघर्षहीन पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन व्यवस्था की कामनाओं को पालता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उसकी परिपोषक सामाजिक व्यवस्था से हाथ छुड़ाने के लिए नारी जाति मजबूर हो रही थी। इसी कारण पूरे संसार के समाजों में नारी पक्षीय आशयों का पुरजोर स्वागत हुआ। इसमें नारी के व्यक्तित्व, अस्तित्व एवं समस्याओं पर विशेष तरह से सोच–विचार होने लगा। स्वाभाविक रूप से पितृसत्तात्मक समाज एवं वर्चस्ववादी संस्कृति के परम्परागत रवैयों पर प्रश्न चिह्न लगाए गये। पुरुषाधिपत्य से नियंत्रित समाज को पूर्णतया बदलने के लिए कार्यरत आन्दोलन के रूप में नारीवाद को राजनीतिक महत्व मिलने लगा। परवर्ती समय में नारीवादी की चर्चा में लिंग या लिंगस्तर, दैहिक राजनीति, यौनता आदि से लेकर वर्ग, वर्ण, भाषा, देश, प्रदेश जैसे विषयों को भी मिला दिया गया। ई0 पोर्टर ने अपनी किताब 'विमन एण्ड मोरल आइडेंटिटी' (1991) में नारीवाद को ''यौन अस्मिता के कारण नारीयों के साथ होने वाली समस्त प्रकार की उपेक्षा, उत्पीड़न, असमानता और अन्याय से मुक्ति का रास्ता खोजने का वैचारिक दर्शन''20 बताया।

आलोचक नारी–लेखन को पुरुष लेखन के समानान्तर चलने वाली धारा मानते हैं। वर्जीनिया वुल्फ ने लिखा है– ''नारी लेखन नारी का होता है, नारीवादी होने से बच नहीं सकता। अपने सर्वोत्तम में वह नारीवादी ही होगा।''21

डॉ0 मैनेजर पाण्डेय नारी और पुरुष दोनों की दृष्टि में अन्तर स्वीकारते हुए कहते है कि– ''जब पुरुष किसी नारी की पीड़ा यातना की चिन्ता करता है तो वह अधिक सहानुभूति या सहृदयता बरतता है।'' पंकज विष्ट लिखते हैं कि– ''लेखन के संदर्भ में नारी पुरुष के भेद को बनाए रखने की ऐसी साजिश के रूप में देखी जानी चाहिए, जो नारी के वास्तविक सरोकारों और पीड़ाओं को अभिव्यक्ति में बाई पास का काम करेगी।''22

ममता कालिया का विचार कुछ अलग है। वे कहती है कि– ''मैं नहीं मानती कि 'नारीवादी–विमर्श' वहीं से शुरू होता है, जहाँ नारी लेखन शुरू होता है। नारीवादी–विमर्श तो हर उस जगह पर हैं, जहाँ नारी का प्रतिकार है। यह मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में है, यह यशपाल के 'झूठासच' में भी तब शुरू हो जाता है जब नारी लेखन की शुरूआत नहीं हुई थी, मुझे लगता है कि नारीवादी–विमर्श को आज सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। मेरा मानना है कि नारीवादी–विमर्श नारी के प्रतिकार का विमर्श है और यह उसे संघर्ष की, उससे लड़ने की ताकत देता है।''23

रेखा कस्तवार लिखती हैं– ''नारीवादी लेखन का प्रमुख नारा है 'पर्सनल इज़ पोलिटिकल'। यह नारा नारी के संघर्षों, व्यक्तिगत अनुभवों और सत्य का खुलासा नारी की जुबानी करने का पक्षधर है ताकि उसकी त्रासद स्थितियों का बोध समाज को हो सके। नारी लेखन जब अपने वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति की बात करता है तब रचना की नायिका के साथ नारी रचनाकार को जोड़कर देखना पाठक के लिए आसान हो जाता है। 'फेक्टस' और 'फिक्शन' का भेद मिट जाता है। 'नारी जब लिखती है तब अपने निजी जीवन और निजता को दाँव पर लगा रही होती है। अपने घर–परिवार और समाज का भय और प्रतिक्रिया का डर अवचेतन रूप से उसकी कलम को संचालित कर 'सेल्फ सेंसर' का काम करता है।''24 आगे वह पुनः कहती हैं कि– ''नारी जब नारी के बारे में लिखती है स्वतंत्रता, अस्मिता, समान अवसरों और अधिकारों के बारे में लिखती है व्यवस्था के लिए खतरा पैदा करती है। आन्तरिक और बाह्य जगत के अनुभवों को दुःसाहस के साथ लिखने वाली न केवल भारतीय वरन् समूचे विश्व साहित्य में महान लेखिकाओं का त्रासद जीवन शोध का विषय है।''25 इस प्रकार नारीवादी दृष्टि की यदि व्यापक परिकल्पना की जाए तो इसमें न केवल नारीयों के लेखन को बल्कि उन पुरुषों को भी शामिल किया जा सकता है जो नारीयों के शोषण, उत्पीड़न एवं उनकी सम्भावनाओं के उचित समाधान से सरोकार रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नारी चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2013, पृ0 24
2. वही, पृ0 24
3. नारी विमर्श : विविध पहलू, संपा0 कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2011, पृ0 41
4. वही, पृ0 75
5. नारी विमर्श का यथार्थ, ममता कालिया, किताब वाले, नई दिल्ली, संस्करण–2015, पृ0 42
6. नई सहस्राब्दी का नारी विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ, संपा0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 XI (भूमिका से)
7. हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श, डॉ0 संजय सिंह, अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृ0 116
8. हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श, संजय सिंह, अनुजा श्रीवास्तव, स्नेह प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2009, पृ0 115
9. नारीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, प्रथम संस्करण–2000, पृ0 5
10. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण–2004, पृ0 66
11. नारी चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 20
12. हिन्दुस्तान पत्र, साक्षात्कार : चित्रा मुद्गल से नारी विमर्श पर, 8 मार्च 2016
13. नारी चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 22
14. वही, पृ0 23
15. रचना समय (कविता विशेषांक), संपा0 वृजनारायण शर्मा, अतिथि सम्पादक, नरेश सक्सेना, पृ0 134
16. औरत : उत्तर कथा, संपा0 राजेन्द्र यादव/अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, बाहर और भीतर की दुनिया (लेख), प्रभा खेतान, पृ0 144
17. स्त्रियाँ पर्दे से प्रजातंत्र तक, दुष्यंत कुमार, पृ0 15
18. नारीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण–2000, पृ0 6
19. आधी जमीन, राहें अलग हैं पर मंजिल एक, संपा0 सविता सक्सेना, संयुक्तांक जनवरी–जुलाई–2005, पृ0 7
20. नारी अध्ययन की बुनियाद, प्रमीला के0पी0, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2015, पृ0 13
21. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना, संपा0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पैसेफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृ0 128
22. हंस, संपादक राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, जनवरी–1999, पंकज बिष्ट (संपादकीय से) पृ0 31
23. हिन्दुस्तान पत्र, साक्षात्कार : चित्रा मुद्गल से नारी विमर्श पर 8 मार्च, 2006
24. नारी चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 कवर पेज
25. वही, पृ0 कवर पेज

डॉ. अरजण वी. नंदाणीया
एम.ए., पीएच.डी.
श्री वी. एम. महेता म्युनि. आर्टस एवं कॉमर्स कॉलेज जामनगर (गुजरात)